Intesab Aalami
ISSN: 2348-5035
Vol. 12 / No. 8 / December 2024

समकालीन कविता में विकलांग विमर्श: आत्मसम्मान और सामाजिक संघर्ष

डॉ. शालिनी.सी.
सह आचार्य,
हिंदी विभाग,
गवर्नमेंट कॉलेज फॉर विमेन,
तिरुवनंतपुरम्, केरल

सारांश— समकालीन हिंदी कविता में विकलांग विमर्श एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक एवं साहित्यिक चेतना के रूप में उभरकर सामने आया है। यह विमर्श केवल शारीरिक अक्षमता तक सीमित नहीं है, बल्कि व्यक्ति के आत्मसम्मान, सामाजिक पहचान, अधिकार-बोध तथा संघर्षशील जीवन को भी अभिव्यक्ति प्रदान करता है। लंबे समय तक साहित्य में विकलांग व्यक्तियों को दया, करुणा और निर्भरता के प्रतीक के रूप में चित्रित किया जाता रहा, किंतु आधुनिक हिंदी कविता में यह दृष्टिकोण बदलता दिखाई देता है। समकालीन कवियों ने विकलांग व्यक्ति को संवेदनशील, आत्मनिर्भर और संघर्षशील मानव के रूप में प्रस्तुत किया है, जो समाज में सम्मानजनक स्थान प्राप्त करने के लिए निरंतर प्रयासरत है। इस अध्ययन में समकालीन हिंदी कविता में उपस्थित विकलांग विमर्श का विश्लेषण आत्मसम्मान और सामाजिक संघर्ष के संदर्भ में किया गया है। अध्ययन का उद्देश्य यह समझना है कि हिंदी कविता किस प्रकार विकलांग व्यक्तियों की मानसिक पीड़ा, सामाजिक उपेक्षा, असमानता, पारिवारिक व्यवहार तथा उनके आत्मविश्वास को अभिव्यक्त करती है। साथ ही यह भी देखा गया है कि कविता सामाजिक चेतना को जागृत करने तथा विकलांग व्यक्तियों के प्रति मानवीय दृष्टिकोण विकसित करने में किस प्रकार सहायक सिद्ध होती है। अध्ययन के दौरान यह स्पष्ट हुआ कि समकालीन कविता विकलांगता को कमजोरी के रूप में नहीं, बल्कि जीवन के संघर्ष और आत्मबल की दृष्टि से प्रस्तुत करती है। कविता में विकलांग व्यक्ति अपने अधिकारों, सम्मान और समान अवसरों की माँग करता दिखाई देता है। यह विमर्श समाज की रूढ़ मानसिकता को चुनौती देता है तथा समावेशी और संवेदनशील सामाजिक व्यवस्था की आवश्यकता को रेखांकित करता है। इस प्रकार समकालीन हिंदी कविता में विकलांग विमर्श सामाजिक न्याय, मानवीय गरिमा और आत्मसम्मान की स्थापना की दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

प्रमुख शब्द — समकालीन हिंदी कविता, विकलांग विमर्श, आत्मसम्मान, सामाजिक संघर्ष, अस्मिता चेतना, सामाजिक न्याय, मानवीय गरिमा, दिव्यांग संवेदना, साहित्यिक विमर्श, समावेशी समाज, सामाजिक उपेक्षा, संघर्षशील जीवन, संवेदनात्मक अभिव्यक्ति, हाशिये का समाज, आधुनिक हिंदी साहित्य

परिचय

समकालीन हिंदी साहित्य में विभिन्न अस्मितामूलक विमर्शों ने साहित्य की दिशा और दृष्टि दोनों को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श और किन्नर विमर्श की तरह विकलांग विमर्श भी आधुनिक साहित्यिक चेतना का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा बन चुका है। यह विमर्श उन लोगों की समस्याओं, संघर्षों, संवेदनाओं और अधिकारों को केंद्र में लाता है जिन्हें समाज लंबे समय तक उपेक्षा, दया और असमान व्यवहार की दृष्टि से देखता रहा। विकलांग व्यक्ति को प्रायः सामाजिक संरचना में निर्भर, असहाय और बोझ के रूप में प्रस्तुत किया गया, किंतु

समकालीन साहित्य ने इस पारंपरिक दृष्टिकोण को चुनौती देने का कार्य किया है।

विकलांगता केवल शारीरिक या मानसिक स्थिति नहीं है, बल्कि यह सामाजिक व्यवहार, सांस्कृतिक मान्यताओं और व्यवस्था की संवेदनहीनता से भी जुड़ा हुआ प्रश्न है। जब समाज किसी व्यक्ति को उसकी शारीरिक अक्षमता के आधार पर सीमित कर देता है, तब वह व्यक्ति केवल शारीरिक ही नहीं बल्कि मानसिक और सामाजिक संघर्षों से भी गुजरता है। इसी कारण आधुनिक साहित्य में विकलांगता को मानवीय अधिकार, समानता और सामाजिक न्याय के संदर्भ में देखा जाने लगा है। समकालीन हिंदी कविता ने इस विषय को अत्यंत संवेदनशील और यथार्थवादी रूप में प्रस्तुत किया है।

स्रोत: https://viklangta.com/hindi-kahaniyon-mein-viklangjan-ke-jeevan-ki-chhaviyan/

कविता समाज की संवेदनाओं और चेतना का दर्पण मानी जाती है। समकालीन कवियों ने अपनी रचनाओं में विकलांग व्यक्तियों के जीवन की पीड़ा, आत्मसम्मान, संघर्ष, अकेलापन, सामाजिक उपेक्षा और अधिकार-बोध को अभिव्यक्ति प्रदान की है। इन कविताओं में विकलांग व्यक्ति केवल सहानुभूति का पात्र नहीं है, बल्कि वह अपने अस्तित्व और सम्मान के लिए संघर्ष करने वाला जागरूक मनुष्य है। कविता के माध्यम से यह स्थापित करने का प्रयास किया गया है कि विकलांगता किसी व्यक्ति की क्षमता या व्यक्तित्व का अंतिम सत्य नहीं होती। व्यक्ति की इच्छाशक्ति, आत्मविश्वास और सामाजिक सहभागिता उसे पूर्ण मानवीय गरिमा प्रदान करती है।

समकालीन कविता में विकलांग विमर्श का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष आत्मसम्मान है। विकलांग व्यक्ति समाज से दया नहीं, बल्कि सम्मान और समान अवसर चाहता है। वह अपनी पहचान को "बेचारा" या "निर्भर" की सीमाओं में स्वीकार नहीं करता। आधुनिक कविताएँ इस मानसिकता को तोड़ती हैं और विकलांग व्यक्ति को आत्मनिर्भर, संवेदनशील और संघर्षशील रूप में प्रस्तुत करती हैं। इसके साथ ही कविता सामाजिक व्यवस्था पर भी प्रश्न उठाती है कि वास्तविक बाधा व्यक्ति के शरीर में है या समाज की सोच और संरचना में।

सामाजिक संघर्ष इस विमर्श का दूसरा प्रमुख आधार है। विकलांग व्यक्तियों को शिक्षा, रोजगार, सार्वजनिक सुविधाओं, सामाजिक संबंधों और पारिवारिक व्यवहार में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। कई बार समाज की संवेदनहीनता और उपेक्षापूर्ण दृष्टिकोण उनके संघर्ष को और अधिक गहरा बना देता है। समकालीन कविता इन अनुभवों को अभिव्यक्त करते हुए समाज में संवेदनशीलता और समावेशी दृष्टिकोण की आवश्यकता को रेखांकित करती है। इस प्रकार कविता केवल भावनात्मक अभिव्यक्ति नहीं रहती, बल्कि सामाजिक परिवर्तन और चेतना का माध्यम भी बन जाती है।

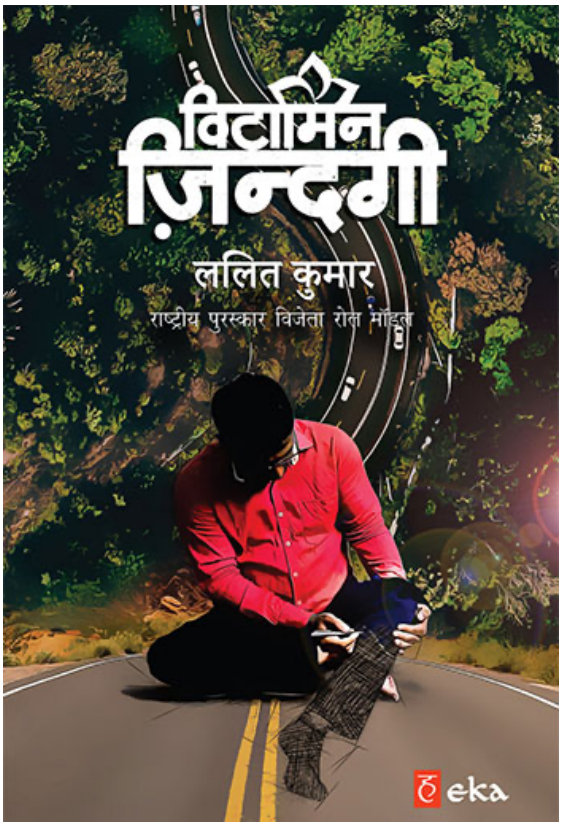

स्रोत: https://kavitakosh.org/

वर्तमान समय में विकलांग विमर्श का महत्त्व इसलिए भी बढ़ गया है क्योंकि मानवाधिकार, समान अवसर और समावेशी समाज की अवधारणा विश्व स्तर पर अधिक प्रासंगिक हुई है। भारतीय संविधान और विभिन्न सामाजिक नीतियों में भी दिव्यांग व्यक्तियों के अधिकारों को महत्त्व दिया गया है। साहित्य ने इन परिवर्तनों को स्वीकार करते हुए विकलांग व्यक्तियों के जीवन को नए दृष्टिकोण से देखने का प्रयास किया है। समकालीन हिंदी कविता में यह विमर्श सामाजिक न्याय, मानवीय गरिमा और आत्मसम्मान की स्थापना की दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता दिखाई देता है।

साहित्य समीक्षा

समकालीन हिंदी साहित्य में विकलांग विमर्श अपेक्षाकृत नया लेकिन अत्यंत महत्त्वपूर्ण विमर्श है। दलित, स्त्री, आदिवासी और किन्नर विमर्श की तरह यह विमर्श भी हाशिये पर रखे गए समुदाय की अस्मिता, अधिकार, सम्मान और सामाजिक भागीदारी को केंद्र में लाता है। विकलांग व्यक्ति को परंपरागत समाज में प्रायः दया, करुणा, निर्भरता और अपूर्णता के दृष्टिकोण से देखा गया, परंतु आधुनिक साहित्य में यह दृष्टि धीरे-धीरे बदलती दिखाई देती है। छोटे लाल गुप्ता के लेख में विकलांग-विमर्श को ऐसे साहित्यिक प्रयास के रूप में देखा गया है जो "बेचारा" कहे जाने वाले वर्ग को सशक्त पहचान देने की दिशा में काम करता है।

समकालीन कविता में विकलांगता केवल शारीरिक अक्षमता का चित्रण नहीं है, बल्कि यह सामाजिक असमानता, मानसिक पीड़ा, उपेक्षा, संघर्ष और आत्मसम्मान की खोज का भी साहित्यिक रूप है। कविता कोश द्वारा संकलित जानकारी के अनुसार हिंदी में विकलांगता-केंद्रित साहित्य का व्यवस्थित स्वरूप 2020 के बाद अधिक स्पष्ट रूप से सामने आता है, जिसमें **'जैसा मैंने देखा तुमको'** और **'अधेड़ हो आयी है गोले'** जैसे काव्य-संकलन उल्लेखनीय हैं।

'जैसा मैंने देखा तुमको' को सम्यक ललित और स्वप्निल तिवारी द्वारा संपादित विकलांगता-केंद्रित हिंदी कविता-संकलन के रूप में प्रस्तुत किया गया है। उपलब्ध प्रकाशकीय विवरण के अनुसार इसमें पचास रचनाएँ हैं और इसे हिंदी साहित्य में विकलांगता पर केंद्रित महत्त्वपूर्ण काव्य-संग्रह माना गया है। यह संग्रह विकलांग व्यक्ति को दया का पात्र नहीं, बल्कि अनुभव, संवेदना और स्वाभिमान से युक्त मनुष्य के रूप में सामने लाता है। इस प्रकार कविता यहाँ सामाजिक दृष्टि को बदलने का माध्यम बनती है।

भारतेन्दु मिश्र की कविताओं पर आधारित सामग्री में विकलांग जीवन की जटिलता, चुप्पी, भय, आत्म-अभिव्यक्ति और सामाजिक असहजता को संवेदनशील रूप से रेखांकित किया गया है। 'हाशिये पर विकलांग' शीर्षक लेख में उनकी रचनाओं के उदाहरणों के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि विकलांग व्यक्ति केवल संघर्षशील शरीर नहीं, बल्कि गहरी भावनात्मक और बौद्धिक उपस्थिति वाला व्यक्तित्व है।

विकलांग विमर्श का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष **आत्मसम्मान** है। समकालीन कविता में विकलांग पात्र या काव्य-वक्ता अपने अस्तित्व को दया या सहानुभूति की सीमित दृष्टि से मुक्त करना

चाहता है। वह समाज से विशेष कृपा नहीं, बल्कि समान अवसर, सम्मानजनक व्यवहार और मानवीय स्वीकार्यता की माँग करता है। यह दृष्टि पुराने करुणामूलक चित्रण से अलग है, जहाँ विकलांग व्यक्ति को अक्सर जीवन की त्रासदी के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया जाता था।

समकालीन हिंदी साहित्य में अस्मितामूलक विमर्शों पर प्रकाशित 2024 के विशेषांक में यह संकेत मिलता है कि आधुनिक हिंदी साहित्य में दलित, आदिवासी, किन्नर, बाल, मजदूर और दिव्यांग विमर्श जैसे विविध प्रश्न सक्रिय रूप से उपस्थित हैं। इससे स्पष्ट होता है कि विकलांग विमर्श अब अलग-थलग विषय नहीं रहा, बल्कि व्यापक अस्मिता-चेतना का हिस्सा बन चुका है।

सामाजिक संघर्ष इस विमर्श का दूसरा केंद्रीय पक्ष है। विकलांग व्यक्ति का संघर्ष केवल शरीर से नहीं, बल्कि समाज की दृष्टि, संस्थागत असुविधा, भाषा में छिपे भेदभाव, पारिवारिक उपेक्षा, रोजगार की बाधाओं और सार्वजनिक स्थानों की अनुपलब्धता से भी है। हिंदी साहित्य में विकलांगता की संवेदनाओं पर उपलब्ध शैक्षणिक सामग्री में यह देखा गया है कि विकलांग पात्रों के प्रति परिवार और समाज का व्यवहार कई बार उपेक्षापूर्ण तथा असंवेदनशील होता है।

कविता में विकलांगता का चित्रण व्यक्ति की आंतरिक शक्ति को भी उजागर करता है। कई कविताएँ यह बताती हैं कि विकलांगता जीवन की समाप्ति नहीं, बल्कि जीवन को दूसरे ढंग से जीने की प्रक्रिया है। उदाहरण के लिए, लोकप्रिय काव्य-पंक्तियों में दिव्यांग व्यक्ति को "न्यूनांग" नहीं बल्कि संभावनाओं से युक्त मनुष्य के रूप में देखने की प्रवृत्ति मिलती है। हालांकि ऐसी प्रेरणात्मक कविताओं में कभी-कभी आदर्शीकरण का खतरा भी रहता है, क्योंकि वास्तविक सामाजिक संघर्ष केवल प्रेरणा से समाप्त नहीं होता।

साहित्यिक दृष्टि से देखा जाए तो विकलांग विमर्श समकालीन कविता को मानवीय संवेदना का नया आयाम देता है। यह विमर्श समाज से प्रश्न करता है कि बाधा शरीर में है या सामाजिक व्यवस्था में। कविता इस प्रश्न को भावनात्मक, वैचारिक और प्रतिरोधात्मक रूप में सामने लाती है। इसीलिए समकालीन हिंदी कविता में विकलांग विमर्श आत्मसम्मान, अधिकार-बोध और सामाजिक न्याय की माँग से जुड़ा हुआ दिखाई देता है।

अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि हिंदी कविता में विकलांग विमर्श अभी प्रारंभिक विकास-स्थिति में है। स्त्री, दलित और आदिवासी विमर्श की तुलना में इस पर आलोचनात्मक शोध कम उपलब्ध है। फिर भी 2020 के बाद आए काव्य-संकलन, साहित्यिक लेख और शोध-आधारित चर्चाएँ इस क्षेत्र को मजबूत आधार प्रदान करती हैं। आगे इस विषय पर कविताओं का पाठ-विश्लेषण, दिव्यांग कवियों की रचनात्मक भूमिका, भाषा में प्रयुक्त शब्दावली और सामाजिक न्याय के संदर्भ में विस्तृत अध्ययन की आवश्यकता है।

शोध पद्धति

प्रस्तुत शोध कार्य "समकालीन कविता में विकलांग विमर्श: आत्मसम्मान और सामाजिक संघर्ष" विषय पर आधारित है। इस अध्ययन में गुणात्मक शोध पद्धति का उपयोग किया गया है, क्योंकि इसका मुख्य उद्देश्य समकालीन हिंदी कविता में विकलांग व्यक्तियों के जीवन-संघर्ष, आत्मसम्मान, सामाजिक उपेक्षा तथा मानवीय संवेदनाओं की साहित्यिक अभिव्यक्ति का विश्लेषण करना है। यह अध्ययन साहित्यिक एवं विश्लेषणात्मक प्रकृति का है, जिसमें विभिन्न कविताओं, आलोचनात्मक लेखों, शोध-पत्रों तथा संबंधित पुस्तकों का अध्ययन करके निष्कर्ष प्राप्त किए गए हैं।

इस शोध में मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों का प्रयोग किया गया है। अध्ययन सामग्री के अंतर्गत समकालीन हिंदी कविता-संग्रह, साहित्यिक पत्रिकाएँ, शोध आलेख, समीक्षात्मक पुस्तकें, ऑनलाइन साहित्यिक मंच तथा विकलांग विमर्श से संबंधित प्रकाशित सामग्री को सम्मिलित किया गया है। विशेष रूप से उन कविताओं और लेखों का चयन किया गया है जिनमें विकलांग व्यक्तियों के आत्मसम्मान, सामाजिक संघर्ष, अस्मिता-बोध और सामाजिक व्यवहार का चित्रण किया गया है।

अध्ययन की प्रक्रिया में सर्वप्रथम विकलांग विमर्श की अवधारणा और उसके साहित्यिक विकास का अध्ययन किया गया। इसके बाद समकालीन हिंदी कविता में उपस्थित विकलांग चेतना को समझने के लिए चयनित कविताओं का गहन पाठ एवं व्याख्यात्मक विश्लेषण किया गया। कविताओं में प्रयुक्त प्रतीकों, बिंबों, भाषा, संवेदनाओं और सामाजिक संदर्भों का विश्लेषण करते हुए यह जानने का प्रयास किया गया कि कवि विकलांग व्यक्ति के जीवन को किस प्रकार प्रस्तुत करता है तथा समाज के प्रति किस प्रकार का दृष्टिकोण विकसित करता है।

इस शोध में वर्णनात्मक (Descriptive) तथा विश्लेषणात्मक (Analytical) पद्धति का भी उपयोग किया गया है। वर्णनात्मक पद्धति के माध्यम से विकलांग विमर्श की पृष्ठभूमि, विकास और साहित्यिक स्वरूप को स्पष्ट किया गया है, जबकि विश्लेषणात्मक पद्धति के अंतर्गत कविताओं में निहित आत्मसम्मान, सामाजिक संघर्ष, उपेक्षा, समानता और मानवीय गरिमा जैसे तत्वों का अध्ययन किया गया है। इसके अतिरिक्त तुलनात्मक दृष्टिकोण का भी सीमित रूप में प्रयोग किया गया है ताकि विभिन्न कवियों की दृष्टि और अभिव्यक्ति के स्वरूप को समझा जा सके।

शोध की प्रामाणिकता बनाए रखने के लिए केवल विश्वसनीय और प्रकाशित स्रोतों का उपयोग किया गया है। अध्ययन में प्रयुक्त संदर्भ सामग्री दिसंबर 2024 से पूर्व प्रकाशित लेखों, पुस्तकों और शोध सामग्री पर आधारित है। शोध के दौरान विषय से संबंधित तथ्यों को निष्पक्ष रूप से प्रस्तुत करने तथा साहित्यिक दृष्टि से संतुलित विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

इस प्रकार प्रस्तुत शोध पद्धति समकालीन हिंदी कविता में विकलांग विमर्श के विभिन्न आयामों को समझने तथा आत्मसम्मान और सामाजिक संघर्ष की अभिव्यक्ति का सम्यक् विश्लेषण करने में सहायक सिद्ध होती है।

समकालीन कविता और विकलांग विमर्श

समकालीन हिंदी कविता समाज की बदलती हुई संवेदनाओं, संघर्षों और मानवीय अनुभवों की सशक्त अभिव्यक्ति है। आधुनिक समय में कविता केवल सौंदर्यबोध या भावनात्मक अभिव्यक्ति तक सीमित नहीं रही, बल्कि उसने समाज के उन वर्गों की आवाज़ को भी स्थान दिया है जिन्हें लंबे समय तक मुख्यधारा से अलग रखा गया। इसी संदर्भ में विकलांग विमर्श समकालीन कविता का एक महत्त्वपूर्ण विषय बनकर उभरा है। यह विमर्श विकलांग व्यक्तियों के जीवन, संघर्ष, आत्मसम्मान, सामाजिक उपेक्षा और अधिकारों को केंद्र में लाता है तथा समाज की पारंपरिक मानसिकता पर प्रश्नचिह्न खड़ा करता है।

भारतीय समाज में लंबे समय तक विकलांगता को दुर्भाग्य, असहायता और निर्भरता के रूप में देखा जाता रहा। साहित्य में भी विकलांग पात्रों को प्रायः दया और करुणा के भाव से प्रस्तुत किया जाता था। परंतु समकालीन कविता ने इस दृष्टिकोण को बदलने का प्रयास किया है। आधुनिक कवि विकलांग व्यक्ति को केवल शारीरिक अक्षमता से नहीं, बल्कि उसकी संवेदनाओं, विचारों, संघर्षशीलता और आत्मबल के आधार पर देखने लगे हैं। कविता में यह परिवर्तन सामाजिक चेतना के विकास और मानवीय अधिकारों के प्रति बढ़ती जागरूकता का परिणाम है।

समकालीन कविता में विकलांग विमर्श का उद्देश्य केवल विकलांग व्यक्तियों की पीड़ा का वर्णन करना नहीं है, बल्कि उनके अस्तित्व और सम्मान की स्थापना करना भी है। कविताओं में यह स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि विकलांग

व्यक्ति समाज से सहानुभूति नहीं, बल्कि समान अवसर और सम्मानजनक व्यवहार चाहता है। वह अपने अधिकारों के प्रति जागरूक है और सामाजिक असमानताओं के विरुद्ध संघर्ष करता है। इस प्रकार समकालीन कविता विकलांग व्यक्ति को सक्रिय, आत्मनिर्भर और संघर्षशील मनुष्य के रूप में प्रस्तुत करती है।

विकलांग विमर्श का एक प्रमुख पक्ष सामाजिक दृष्टिकोण की आलोचना है। समाज अक्सर विकलांग व्यक्तियों को सीमित क्षमताओं वाला मानकर उनके प्रति उपेक्षापूर्ण व्यवहार करता है। सार्वजनिक स्थानों, शिक्षा, रोजगार और सामाजिक जीवन में उन्हें अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ता है। समकालीन कवियों ने इन समस्याओं को संवेदनात्मक और यथार्थवादी रूप में प्रस्तुत किया है। कविता के माध्यम से यह प्रश्न उठाया गया है कि वास्तविक समस्या व्यक्ति की विकलांगता में है या समाज की असंवेदनशील व्यवस्था में। इस प्रकार कविता सामाजिक संरचना की कमियों को उजागर करते हुए परिवर्तन की आवश्यकता को रेखांकित करती है।

समकालीन कविता में विकलांग व्यक्तियों के आत्मसम्मान और आत्मविश्वास को विशेष महत्त्व दिया गया है। कवि यह दिखाने का प्रयास करते हैं कि शारीरिक अक्षमता किसी व्यक्ति की संपूर्ण पहचान नहीं होती। उसकी इच्छाशक्ति, प्रतिभा और संघर्ष करने की क्षमता उसे समाज में सम्मानजनक स्थान दिला सकती है। कई कविताओं में विकलांग पात्र जीवन की कठिन परिस्थितियों के बावजूद निराश नहीं होते, बल्कि अपने आत्मबल से समाज की रूढ़ धारणाओं को चुनौती देते हैं। इस प्रकार कविता प्रेरणा और सामाजिक चेतना दोनों का कार्य करती है।

आधुनिक हिंदी कविता में विकलांग विमर्श मानवीय संवेदना के विस्तार का भी प्रतीक है। यह विमर्श समाज को अधिक समावेशी और संवेदनशील बनाने की दिशा में कार्य करता है। कविता पाठकों को यह सोचने के लिए प्रेरित करती है कि विकलांग व्यक्ति भी समान अधिकारों और सम्मान के अधिकारी हैं। साहित्य के माध्यम से समाज में सहअस्तित्व, समानता और मानवीय गरिमा की भावना को मजबूत किया जाता है।

समकालीन कविता की विशेषता यह है कि वह केवल भावनात्मक सहानुभूति तक सीमित नहीं रहती, बल्कि सामाजिक परिवर्तन की चेतना भी उत्पन्न करती है। विकलांग विमर्श से जुड़ी कविताएँ समाज में मौजूद भेदभाव, असमानता और उपेक्षा के विरुद्ध प्रतिरोध का स्वर बनकर सामने आती हैं। यह कविता विकलांग व्यक्तियों के जीवन को नए दृष्टिकोण से देखने का आग्रह करती है और यह संदेश देती है कि किसी भी व्यक्ति का मूल्य उसकी शारीरिक क्षमता से नहीं, बल्कि उसके मानवीय गुणों और व्यक्तित्व से निर्धारित होना चाहिए। इस प्रकार समकालीन हिंदी कविता में विकलांग विमर्श सामाजिक न्याय, आत्मसम्मान, समानता और मानवीय गरिमा की स्थापना का एक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक प्रयास है। यह विमर्श न केवल विकलांग व्यक्तियों की समस्याओं को उजागर करता है, बल्कि समाज को अधिक संवेदनशील और समावेशी बनाने की दिशा में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

आत्मसम्मान की अभिव्यक्ति

समकालीन हिंदी कविता में विकलांग विमर्श का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष आत्मसम्मान की अभिव्यक्ति है। आधुनिक कवियों ने विकलांग व्यक्ति को केवल दया और सहानुभूति का पात्र मानने की पारंपरिक सोच का विरोध किया है। कविता में विकलांग व्यक्ति अपनी पहचान, स्वतंत्रता और मानवीय गरिमा के लिए संघर्ष करता दिखाई देता है। वह समाज से किसी विशेष कृपा की अपेक्षा नहीं करता, बल्कि समान अधिकार, सम्मानजनक व्यवहार और सामाजिक स्वीकार्यता की माँग करता है। इस प्रकार समकालीन कविता विकलांग व्यक्ति के आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता को प्रमुखता प्रदान करती है।

भारतीय समाज में लंबे समय तक विकलांग व्यक्तियों को "अपूर्ण" या "निर्भर" समझा जाता रहा। परिवार और समाज की यह मानसिकता कई बार उनके आत्मविश्वास को कमजोर कर देती है। समकालीन कविता इस सोच को चुनौती देते हुए

यह स्थापित करती है कि व्यक्ति की वास्तविक पहचान उसकी शारीरिक स्थिति से नहीं, बल्कि उसके विचार, संवेदनशीलता, संघर्षशीलता और आत्मबल से निर्धारित होती है। कविताओं में विकलांग पात्र अपनी परिस्थितियों से टूटते नहीं, बल्कि आत्मसम्मान के साथ जीवन जीने का प्रयास करते हैं।

आधुनिक कवियों ने आत्मसम्मान को केवल व्यक्तिगत भावना के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक अधिकार के रूप में भी प्रस्तुत किया है। विकलांग व्यक्ति समाज में समान अवसर चाहता है ताकि वह अपनी क्षमता के अनुसार जीवन जी सके। कविता यह संदेश देती है कि किसी व्यक्ति को उसकी शारीरिक अक्षमता के आधार पर कमतर आँकना मानवता के विरुद्ध है। इसलिए समकालीन कविता में आत्मसम्मान का स्वर सामाजिक चेतना और मानवीय समानता से जुड़ जाता है।

समकालीन कविता में कई स्थानों पर विकलांग व्यक्ति अपनी मौन पीड़ा को शब्द देता दिखाई देता है। वह समाज की उपेक्षापूर्ण दृष्टि, उपहास और दया-भावना के विरुद्ध अपनी असहमति व्यक्त करता है। उसकी यह अभिव्यक्ति केवल विरोध नहीं, बल्कि अपने अस्तित्व की घोषणा भी है। कवि यह दिखाने का प्रयास करते हैं कि विकलांग व्यक्ति को सबसे अधिक पीड़ा उसकी शारीरिक स्थिति से नहीं, बल्कि समाज की असंवेदनशीलता से होती है। इसलिए आत्मसम्मान की रक्षा उसके लिए जीवन के सबसे महत्त्वपूर्ण संघर्षों में से एक बन जाती है।

कविता में आत्मसम्मान की अभिव्यक्ति कई रूपों में दिखाई देती है। कहीं विकलांग व्यक्ति आत्मनिर्भर बनने की इच्छा प्रकट करता है, कहीं वह अपने श्रम और प्रतिभा के माध्यम से समाज में पहचान बनाना चाहता है, तो कहीं वह सामाजिक उपेक्षा के बावजूद आत्मविश्वास बनाए रखता है। यह आत्मबल कविता को केवल करुणा का माध्यम नहीं रहने देता, बल्कि उसे प्रेरणा और प्रतिरोध की शक्ति प्रदान करता है।

समकालीन कवियों ने यह भी स्पष्ट किया है कि विकलांग व्यक्ति को "सामान्य" साबित करने की आवश्यकता नहीं है। वह अपने अस्तित्व में पूर्ण है और सम्मान का अधिकारी है। कविता इस बात को रेखांकित करती है कि आत्मसम्मान किसी भी व्यक्ति के जीवन का आधार है और बिना सम्मान के कोई भी सामाजिक व्यवस्था मानवीय नहीं कही जा सकती। इस प्रकार समकालीन हिंदी कविता विकलांग व्यक्ति की आत्मचेतना को स्वर प्रदान करती है और उसे समाज के केंद्र में स्थापित करने का प्रयास करती है।

आत्मसम्मान की अभिव्यक्ति समकालीन कविता को मानवीय संवेदना का व्यापक आयाम देती है। यह कविता पाठकों को संवेदनशील बनाती है तथा उन्हें यह समझने के लिए प्रेरित करती है कि विकलांग व्यक्ति को सहानुभूति से अधिक सम्मान और अवसर की आवश्यकता है। कविता के माध्यम से समाज में समानता, आत्मविश्वास और गरिमापूर्ण जीवन की भावना को मजबूत किया जाता है।

सामाजिक संघर्ष और उपेक्षा

समकालीन हिंदी कविता में विकलांग विमर्श का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण पक्ष सामाजिक संघर्ष और उपेक्षा का चित्रण है। विकलांग व्यक्ति का जीवन केवल शारीरिक कठिनाइयों तक सीमित नहीं होता, बल्कि उसे समाज की असंवेदनशीलता, उपेक्षापूर्ण व्यवहार और असमान अवसरों के कारण अनेक मानसिक तथा सामाजिक संघर्षों का सामना करना पड़ता है। आधुनिक कवियों ने इन संघर्षों को अत्यंत संवेदनशील और यथार्थवादी रूप में प्रस्तुत किया है। उनकी कविताएँ यह स्पष्ट करती हैं कि विकलांग व्यक्ति की सबसे बड़ी समस्या उसकी शारीरिक अक्षमता नहीं, बल्कि समाज की संकीर्ण सोच और भेदभावपूर्ण दृष्टिकोण है।

भारतीय समाज में लंबे समय तक विकलांग व्यक्तियों को दया, बोझ और निर्भरता की दृष्टि से देखा जाता रहा है। कई बार परिवार और समाज दोनों ही उन्हें सामान्य जीवन से अलग मान लेते हैं। यह व्यवहार उनके आत्मविश्वास और सामाजिक सहभागिता को प्रभावित करता है। समकालीन कविता इस उपेक्षापूर्ण मानसिकता पर तीखा प्रश्न उठाती है। कवि यह दिखाने का प्रयास करते हैं कि विकलांग व्यक्ति भी अन्य लोगों

की तरह सपने, भावनाएँ और अधिकार रखता है, किंतु समाज उसे बराबरी का स्थान देने में संकोच करता है।

सामाजिक संघर्ष का स्वर समकालीन कविता में अनेक स्तरों पर दिखाई देता है। शिक्षा, रोजगार, परिवहन, सार्वजनिक सुविधाओं और सामाजिक संबंधों में विकलांग व्यक्तियों को अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ता है। कई कविताएँ यह चित्रित करती हैं कि समाज उन्हें सक्षम नागरिक के रूप में स्वीकार करने के बजाय "अलग" और "कमज़ोर" व्यक्ति के रूप में देखता है। इस प्रकार उनकी प्रतिभा और योग्यता को अनदेखा कर दिया जाता है। कवि इस स्थिति को सामाजिक अन्याय के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

समकालीन कवियों ने यह भी दिखाया है कि विकलांग व्यक्ति का संघर्ष केवल बाहरी नहीं, बल्कि आंतरिक भी होता है। लगातार उपेक्षा, उपहास और दया-भावना का सामना करने के कारण उसके भीतर अकेलापन, पीड़ा और असुरक्षा की भावना उत्पन्न हो सकती है। फिर भी वह अपने आत्मबल और इच्छाशक्ति के सहारे जीवन में आगे बढ़ने का प्रयास करता है। कविता इस मानसिक संघर्ष को अत्यंत मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त करती है।

कई कविताओं में विकलांग व्यक्ति समाज की संवेदनहीनता के विरुद्ध प्रतिरोध करता दिखाई देता है। वह यह स्वीकार करने से इंकार करता है कि उसकी पहचान केवल उसकी शारीरिक स्थिति से निर्धारित हो। वह समान अवसर, सम्मान और सामाजिक सहभागिता की माँग करता है। इस प्रकार कविता में संघर्ष केवल पीड़ा का वर्णन नहीं, बल्कि अधिकारों की चेतना और सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा भी है।

समकालीन कविता सामाजिक उपेक्षा के विभिन्न रूपों को भी उजागर करती है। परिवार के भीतर उपेक्षा, सार्वजनिक जीवन में असुविधा, रोजगार के अवसरों में भेदभाव तथा सामाजिक कार्यक्रमों में अलगाव जैसी स्थितियाँ विकलांग व्यक्ति के जीवन को कठिन बनाती हैं। कई बार लोग सहानुभूति दिखाने के नाम पर भी उनकी गरिमा को आहत कर देते हैं। कविता इन सूक्ष्म लेकिन गहरे अनुभवों को सामने लाकर समाज को आत्मचिंतन के लिए प्रेरित करती है।

विकलांग विमर्श से जुड़ी कविताएँ यह संदेश देती हैं कि वास्तविक सभ्यता वही है जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को समान सम्मान और अवसर प्राप्त हो। यदि समाज किसी व्यक्ति को उसकी शारीरिक स्थिति के कारण हाशिये पर धकेल देता है, तो वह सामाजिक न्याय और मानवता दोनों के मूल्यों का उल्लंघन करता है। इसलिए समकालीन कविता केवल समस्या का चित्रण नहीं करती, बल्कि संवेदनशील और समावेशी समाज की आवश्यकता को भी रेखांकित करती है।

समकालीन हिंदी कविता में सामाजिक संघर्ष और उपेक्षा का चित्रण मानवीय संवेदना को व्यापक बनाता है। यह कविता पाठकों को यह समझने के लिए प्रेरित करती है कि विकलांग व्यक्ति को दया नहीं, बल्कि समानता और सम्मान की आवश्यकता है। कविता के माध्यम से समाज में जागरूकता उत्पन्न होती है और यह संदेश प्रसारित होता है कि हर व्यक्ति को गरिमापूर्ण जीवन जीने का अधिकार है।

अतः कहा जा सकता है कि समकालीन हिंदी कविता में सामाजिक संघर्ष और उपेक्षा का चित्रण विकलांग विमर्श का केंद्रीय आधार है। यह कविता समाज की असंवेदनशीलता को उजागर करते हुए विकलांग व्यक्तियों के अधिकार, सम्मान और समानता की माँग को सशक्त स्वर प्रदान करती है।

चयनित कविताओं का विश्लेषण

समकालीन हिंदी कविता में विकलांग विमर्श का स्वर विविध रूपों में दिखाई देता है। आधुनिक कवियों ने विकलांग व्यक्तियों के जीवन-संघर्ष, आत्मसम्मान, सामाजिक उपेक्षा और मानसिक पीड़ा को संवेदनात्मक तथा यथार्थवादी रूप में प्रस्तुत किया है। इन कविताओं में विकलांग व्यक्ति केवल करुणा का विषय नहीं है, बल्कि वह अपने अस्तित्व और अधिकारों के लिए संघर्ष करने वाला सजग मानव है। चयनित कविताओं के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि समकालीन कविता विकलांगता को सामाजिक चेतना और मानवीय गरिमा के संदर्भ में देखने का प्रयास करती है।

सम्यक ललित और स्वप्निल तिवारी द्वारा संपादित काव्य-संकलन **'जैसा मैंने देखा तुमको'** विकलांग विमर्श से संबंधित

महत्त्वपूर्ण काव्य-संग्रह माना जाता है। इस संग्रह की कविताओं में विकलांग व्यक्ति की आंतरिक संवेदनाओं और सामाजिक अनुभवों को प्रमुखता दी गई है। कविताएँ यह दर्शाती हैं कि समाज अक्सर विकलांग व्यक्ति को उसकी क्षमता के बजाय उसकी कमी के आधार पर पहचानता है। इसके बावजूद कविताओं के पात्र अपने आत्मविश्वास और इच्छाशक्ति के माध्यम से जीवन में आगे बढ़ने का प्रयास करते हैं। इन रचनाओं में आत्मसम्मान का स्वर अत्यंत प्रबल रूप में उपस्थित है।

भारतेन्दु मिश्र की कविताओं में हाशिये पर पड़े व्यक्तियों के जीवन का गहरा चित्रण मिलता है। उनकी रचनाओं में विकलांग व्यक्ति की मौन पीड़ा, सामाजिक अलगाव और मानसिक संघर्ष को अत्यंत मार्मिक ढंग से व्यक्त किया गया है। कवि यह दिखाने का प्रयास करता है कि विकलांग व्यक्ति को सबसे अधिक कष्ट समाज की उपेक्षा और असंवेदनशील व्यवहार से होता है। उनकी कविताओं में कई स्थानों पर यह अनुभव मिलता है कि समाज व्यक्ति की प्रतिभा और संवेदनाओं को समझने के बजाय उसकी शारीरिक स्थिति को ही उसकी पहचान बना देता है। यह दृष्टिकोण कविता में प्रतिरोध और असहमति का स्वर उत्पन्न करता है।

समकालीन कविताओं में आत्मसम्मान की भावना विशेष रूप से दिखाई देती है। कई कविताएँ यह स्पष्ट करती हैं कि विकलांग व्यक्ति सहानुभूति नहीं, बल्कि सम्मान और समान अवसर चाहता है। वह अपनी पहचान को समाज की दया-भावना तक सीमित नहीं रहने देना चाहता। कविताओं में प्रयुक्त भाषा और प्रतीक यह संकेत देते हैं कि विकलांगता जीवन की समाप्ति नहीं, बल्कि संघर्ष और आत्मबल की नई शुरुआत है। कवि विकलांग व्यक्ति के भीतर मौजूद आत्मविश्वास और जीवटता को प्रमुखता देते हैं।

कुछ कविताओं में सामाजिक संघर्ष का चित्रण अत्यंत यथार्थवादी रूप में किया गया है। शिक्षा, रोजगार और सामाजिक जीवन में विकलांग व्यक्तियों को जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, उन्हें कवियों ने संवेदनशील ढंग से प्रस्तुत किया है। सार्वजनिक स्थानों पर असुविधा, लोगों की उपेक्षापूर्ण दृष्टि और पारिवारिक असंवेदनशीलता जैसी स्थितियाँ कविता में बार-बार सामने आती हैं। इन कविताओं के माध्यम से यह संदेश दिया गया है कि समस्या व्यक्ति की विकलांगता में नहीं, बल्कि समाज की व्यवस्था और मानसिकता में निहित है।

चयनित कविताओं में प्रतीकों और बिंबों का प्रयोग भी उल्लेखनीय है। अंधकार, दीवार, टूटी हुई राह, बंद दरवाज़े और मौन जैसे प्रतीक सामाजिक अवरोधों और मानसिक संघर्षों को अभिव्यक्त करते हैं। वहीं प्रकाश, खुला आकाश, उड़ान और चलती हुई राह जैसे बिंब आशा, आत्मविश्वास और स्वतंत्रता के प्रतीक बनकर सामने आते हैं। इस प्रकार कविता केवल पीड़ा का चित्रण नहीं करती, बल्कि संघर्ष के भीतर आशा और सकारात्मकता का भी संदेश देती है।

समकालीन कविताओं का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि वे विकलांग व्यक्ति को "विशेष" या "अलग" सिद्ध करने का प्रयास नहीं करतीं, बल्कि उसे सामान्य मानवीय गरिमा के साथ प्रस्तुत करती हैं। कवि यह स्पष्ट करते हैं कि विकलांग व्यक्ति भी समाज का समान अधिकारों वाला सदस्य है और उसे किसी अतिरिक्त दया की नहीं, बल्कि समान अवसरों की आवश्यकता है। यह दृष्टिकोण आधुनिक सामाजिक चेतना और मानवाधिकार की अवधारणा से जुड़ा हुआ है।

इन कविताओं का विश्लेषण यह भी दर्शाता है कि समकालीन हिंदी कविता समाज में संवेदनशीलता और समावेशी दृष्टिकोण विकसित करने का कार्य कर रही है। कविता पाठकों को यह सोचने के लिए प्रेरित करती है कि विकलांग व्यक्तियों के प्रति व्यवहार में परिवर्तन लाना केवल सामाजिक कर्तव्य नहीं, बल्कि मानवीय आवश्यकता भी है। इस प्रकार चयनित कविताएँ विकलांग विमर्श को साहित्यिक और सामाजिक दोनों स्तरों पर सशक्त बनाती हैं।

विकलांग चेतना और सामाजिक परिवर्तन

समकालीन हिंदी साहित्य में विकलांग चेतना एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक और मानवीय विचारधारा के रूप में विकसित हुई है। यह चेतना केवल विकलांग व्यक्तियों की समस्याओं और

पीड़ा तक सीमित नहीं है, बल्कि उनके अधिकार, आत्मसम्मान, समानता और सामाजिक सहभागिता की माँग को भी अभिव्यक्त करती है। आधुनिक समय में साहित्य ने यह समझ विकसित करने का प्रयास किया है कि विकलांगता किसी व्यक्ति की कमजोरी नहीं, बल्कि समाज की संरचनात्मक असमानताओं और संवेदनहीन दृष्टिकोण का परिणाम भी है। इसी कारण समकालीन कविता में विकलांग चेतना सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बनकर सामने आती है।

विकलांग चेतना का मूल उद्देश्य समाज में यह जागरूकता उत्पन्न करना है कि विकलांग व्यक्ति भी समान अधिकारों और सम्मान के अधिकारी हैं। लंबे समय तक समाज ने उन्हें दया और सहानुभूति की दृष्टि से देखा, जिससे उनकी स्वतंत्र पहचान और आत्मविश्वास प्रभावित हुआ। समकालीन कविता इस मानसिकता का विरोध करती है और यह संदेश देती है कि विकलांग व्यक्ति समाज का सक्रिय और महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। कविता के माध्यम से यह चेतना विकसित होती है कि किसी व्यक्ति का मूल्य उसकी शारीरिक क्षमता से नहीं, बल्कि उसके मानवीय गुणों और सामाजिक योगदान से निर्धारित होना चाहिए।

समकालीन कवियों ने विकलांग व्यक्तियों के जीवन-संघर्ष को सामाजिक यथार्थ के रूप में प्रस्तुत किया है। शिक्षा, रोजगार, परिवहन, सार्वजनिक सुविधाओं और सामाजिक व्यवहार में जो कठिनाइयाँ विकलांग व्यक्तियों को झेलनी पड़ती हैं, वे केवल व्यक्तिगत समस्याएँ नहीं हैं, बल्कि सामाजिक व्यवस्था की कमियों को भी उजागर करती हैं। कविता इन परिस्थितियों को संवेदनशील ढंग से प्रस्तुत करते हुए समाज को आत्मचिंतन के लिए प्रेरित करती है। इस प्रकार विकलांग चेतना सामाजिक अन्याय और भेदभाव के विरुद्ध प्रतिरोध का स्वर बन जाती है।

सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में साहित्य की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। कविता समाज की चेतना को प्रभावित करने की क्षमता रखती है। जब कविता विकलांग व्यक्ति के अनुभवों, संघर्षों और भावनाओं को अभिव्यक्ति देती है, तब पाठकों के भीतर संवेदनशीलता और सहानुभूति का विकास होता है। यह संवेदनशीलता धीरे-धीरे सामाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने का कार्य करती है। समकालीन हिंदी कविता विकलांग व्यक्तियों को "कमज़ोर" या "निर्भर" के रूप में नहीं, बल्कि आत्मविश्वासी और संघर्षशील व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत करती है। इससे समाज में उनके प्रति सम्मान और समानता की भावना विकसित होती है।

विकलांग चेतना सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ भाषा और सोच में भी परिवर्तन लाने का प्रयास करती है। पहले साहित्य और समाज में ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाता था जो विकलांग व्यक्तियों को हीनता के भाव से जोड़ते थे। आधुनिक साहित्य ने इस प्रवृत्ति को बदलते हुए अधिक संवेदनशील और सम्मानजनक शब्दावली को अपनाया है। यह परिवर्तन केवल भाषा का नहीं, बल्कि मानसिकता का भी संकेत है। समकालीन कविता में यह चेतना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है कि किसी भी व्यक्ति को उसकी शारीरिक स्थिति के आधार पर कमतर नहीं आँका जाना चाहिए।

कई कविताओं में विकलांग व्यक्ति अपने अधिकारों और सम्मान के लिए संघर्ष करता दिखाई देता है। वह समाज की उपेक्षापूर्ण दृष्टि को स्वीकार नहीं करता और अपनी पहचान को आत्मविश्वास के साथ स्थापित करने का प्रयास करता है। यह संघर्ष केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम है। कविता इस संघर्ष को सकारात्मक रूप में प्रस्तुत करते हुए यह संदेश देती है कि समावेशी समाज का निर्माण तभी संभव है जब प्रत्येक व्यक्ति को समान अवसर और गरिमा प्राप्त हो।

समकालीन हिंदी कविता में विकलांग चेतना लोकतांत्रिक मूल्यों और मानवाधिकारों की अवधारणा से भी जुड़ी हुई है। आधुनिक समाज समानता, स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय की बात करता है, इसलिए विकलांग व्यक्तियों को मुख्यधारा से अलग रखना इन मूल्यों के विरुद्ध है। कविता इस विरोधाभास को उजागर करती है और समाज को अधिक संवेदनशील तथा समावेशी बनने का संदेश देती है। इस प्रकार कविता सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को गति प्रदान करती है।

निष्कर्ष

समकालीन हिंदी कविता में विकलांग विमर्श आधुनिक साहित्य की मानवीय और सामाजिक चेतना का एक महत्त्वपूर्ण आयाम बनकर उभरा है। यह विमर्श केवल विकलांग व्यक्तियों की शारीरिक स्थिति का चित्रण नहीं करता, बल्कि उनके आत्मसम्मान, सामाजिक संघर्ष, मानसिक पीड़ा, अस्मिता-बोध और अधिकारों की चेतना को भी अभिव्यक्ति प्रदान करता है। आधुनिक कवियों ने विकलांग व्यक्ति को दया और करुणा के पारंपरिक दायरे से बाहर निकालकर एक संघर्षशील, संवेदनशील और आत्मविश्वासी मानव के रूप में प्रस्तुत किया है।

अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि समकालीन कविता विकलांगता को व्यक्तिगत कमजोरी के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक दृष्टिकोण और व्यवस्था से जुड़े प्रश्न के रूप में देखती है। कविताओं में बार-बार यह विचार सामने आता है कि वास्तविक बाधा व्यक्ति की शारीरिक स्थिति में नहीं, बल्कि समाज की असंवेदनशील सोच और भेदभावपूर्ण व्यवहार में निहित है। शिक्षा, रोजगार, सामाजिक संबंधों और सार्वजनिक जीवन में विकलांग व्यक्तियों को जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, उन्हें कवियों ने अत्यंत यथार्थवादी और संवेदनशील रूप में चित्रित किया है।

इस अध्ययन में आत्मसम्मान की अभिव्यक्ति को विकलांग विमर्श का केंद्रीय तत्व पाया गया। समकालीन कविता यह संदेश देती है कि विकलांग व्यक्ति सहानुभूति नहीं, बल्कि सम्मान और समान अवसर चाहता है। वह अपनी पहचान को दया या निर्भरता तक सीमित नहीं रहने देना चाहता। कविता में उसकी संघर्षशीलता, आत्मबल और आत्मनिर्भरता को विशेष महत्त्व दिया गया है। यह दृष्टिकोण समाज में सकारात्मक परिवर्तन और समावेशी चेतना के विकास की दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

चयनित कविताओं के विश्लेषण से यह भी स्पष्ट हुआ कि समकालीन हिंदी कविता सामाजिक उपेक्षा और भेदभाव के विरुद्ध प्रतिरोध का स्वर बनकर सामने आती है। कविता पाठकों को यह सोचने के लिए प्रेरित करती है कि प्रत्येक व्यक्ति को उसकी शारीरिक क्षमता से नहीं, बल्कि उसके मानवीय गुणों और सामाजिक योगदान के आधार पर सम्मान मिलना चाहिए। इस प्रकार कविता सामाजिक न्याय, समानता और मानवीय गरिमा की स्थापना का माध्यम बन जाती है।

विकलांग चेतना से जुड़ी समकालीन कविताएँ समाज में संवेदनशीलता और सहअस्तित्व की भावना को मजबूत करती हैं। वे यह संदेश देती हैं कि समावेशी समाज का निर्माण तभी संभव है जब प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार और सम्मान प्राप्त हो। साहित्य के माध्यम से विकलांग व्यक्तियों के जीवन-संघर्षों को सामने लाकर समाज में जागरूकता और मानवीय दृष्टिकोण विकसित करने का प्रयास किया गया है।

संदर्भ सूची

गुप्ता, छोटे लाल। *हिंदी साहित्य एवं विकलांग विमर्श*। साहित्य कुंज।

साहित्य में विकलांगता विमर्श। कविता कोश।

ललित, सम्यक एवं तिवारी, स्वप्निल (सम्पादक)। *जैसा मैंने देखा तुमको*। नई दिल्ली: श्वेतवर्णा प्रकाशन, 2023।

मिश्र, भारतेन्दु। "हाशिये पर विकलांग।" सबलोग साहित्य मंच।

समकालीन हिंदी साहित्य में अस्मितामूलक विमर्श (विशेषांक)। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिसिप्लिनरी रिसर्च एंड टेक्नोलॉजी (आई.जे.एम.आर.टी.), 2024।

वीर नर्मद दक्षिण गुजरात विश्वविद्यालय। *हिंदी साहित्य में विकलांगता संबंधी अध्ययन सामग्री*।

"दिव्यांग चेतना संबंधी कविता।" मातृभाषा डॉट कॉम।

शेक्सपीयर, टॉम। *डिसएबिलिटी राइट्स एंड रॉन्स रिविज़िटेड*। रूटलेज प्रकाशन, 2014।

गारलैंड-थॉमसन, रोज़मेरी। *एक्स्ट्राऑर्डिनरी बॉडीज़: फिगरिंग फिजिकल डिसएबिलिटी इन अमेरिकन कल्चर एंड लिटरेचर*। कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस, 1997।

डेविस, लेनार्ड जे. *द डिसएबिलिटी स्टडीज़ रीडर* (पाँचवाँ संस्करण)। रूटलेज प्रकाशन, 2016।

ऑलिवर, माइकल। *द पॉलिटिक्स ऑफ डिसएबलमेंट*। पालग्रेव मैकमिलन, 1990।

बार्न्स, कॉलिन एवं मर्सर, ज्योफ्री। *एक्सप्लोरिंग डिसएबिलिटी*। पॉलिटी प्रेस, 2010।

ललित कुमार. (2019). विटामिन ज़िन्दगी. नई दिल्ली: एका (हिन्द युग्म / वेस्टलैंड पब्लिकेशन्स)।